International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(6): 07-11

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(6): 07-11
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 03-09-2018
Accepted: 05-10-2018

**धर्मपाल**
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

**Correspondence**
**धर्मपाल**
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

# समासवृत्तिविमर्श : सरस्वतीकण्ठाभरण के विशेष संदर्भ में

**धर्मपाल**

### प्रस्तावना

व्याकरण भाषा का मेरुदण्ड है। वेदाङ्गों में इसका स्थान सर्वोपरि है – मुखं व्याकरणं स्मृतम्[1]। भगवान् पतञ्जलि ने भी "प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम्"[2] कहकर व्याकरण के महत्त्व को बताते हुए उसे सर्वोपरि माना है। व्याकरण शास्त्र के माध्यम से ही शब्दों का समुचित प्रयोग सम्भव होता है। व्याकरण से शिष्ट भाषा का संवर्धन तथा परिष्कार होता है।

संस्कृत व्याकरण की गौरवशाली परम्परा में पाणिनि उत्तरवर्ती व्याकरणग्रन्थों का ऐतिह्य पर्याप्त विस्तृत एवं वैभव सम्पन्न है। पाणिनीय शब्दानुशासन जैसे सर्वोत्कृष्ट एवं सम्पूर्ण व्याकरण के प्राप्त हो जाने पर भी पाणिनीयेतर सम्प्रदाय के व्याकरणों का आविर्भाव भाषायी विकास एवं मानवीय चिन्तनशीलता की विकासयात्रा का विलक्षण उदाहरण है। पाणिनि उत्तरवर्ती व्याकरणों में कातन्त्र, चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, सरस्वतीकण्ठाभरण, सारस्वत, मुग्धबोध, हरिनामामृत आदि व्याकरण विशेषतः उल्लेखनीय है। इसी व्याकरण परम्परा में भोजदेव-विरचित 'सरस्वतीकण्ठाभरण' सबसे महत्त्वपूर्ण है। प्रकृत शोधपत्र में इसी भोजीय तन्त्र 'सरस्वतीकण्ठाभरण' को आधार बनाकर समासवृत्ति का विश्लेषण किया जा रहा है। जिससे तत्तन्त्रगत समासवृत्ति को साम्य-वैषम्यादि की रीति से तथा नवीन संकल्पनाओं को नवनीतवत् पाठक के समक्ष समुपस्थित कराया जा सकें।

### सरस्वतीकण्ठाभरण : सामान्य परिचय

महाराज भोजदेव ने अपने से पूर्ववर्ती व्याकरण-परम्परा का गम्भीर अनुशीलन कर यह अनुभूत किया कि पाणिनीय सूत्रपाठ, उणादिपाठ, धातुपाठ, गणपाठ, लिङ्गानुशासन, परिभाषा व वार्तिक आदि के पृथक् पृथक् उपनिबद्ध होने के कारण इनका अध्ययन सुकर नहीं है। अतः इस अति विषम परिस्थिति का सूक्ष्म आकलन करके, उनकी पारम्पारिक न्यूनताओं को हटाकर महाराज भोजदेव ने अपने शब्दानुशासन में सूत्रपाठ के साथ उणादिपाठ, गणपाठ, परिभाषा एवं फिट्सूत्रों का समावेश करके व्याकरण की पारम्पारिक पद्धति को नवीन रूप प्रदान किया।

सरस्वतीकण्ठाभरण में पाणिनीय अष्टाध्यायी के समान ८ अध्याय हैं तथा प्रत्येक अध्याय में ४ पाद हैं, पर सूत्रों की संख्या अष्टाध्यायी से अधिक है। इसकी समस्त सूत्र संख्या ६४३२ हैं। मूल व्याकरण सूत्रपाठ के साथ साथ परिभाषा सूत्र, उणदिसूत्र, गणपाठ, गणसूत्र, इष्टि, वार्तिक, फिट्सूत्र आदि का भी समावेश होने से स्वरस्वतीकण्ठाभरण का कलेवर पर्याप्त विस्तृत को गया है। इसके प्रारम्भिक ७ अध्यायों में लौकिक शब्दों तथा आठवें अध्याय में स्वर-प्रकरण व वैदिक शब्दों का अन्वाख्यान किया गया है।

समास से सम्बद्ध सूत्रों का अन्वाख्यान इसके तृतीय अध्यायस्थ द्वितीय एवं तृतीय पाद में किया गया है। द्वितीय पाद के अव्ययीभावः[3] से तृतीय पाद के अन्त तक समास विधान किया गया है।

### समास

समास संस्कृतभाषा रूपी दुर्ग की बाह्य परिखा है। इसके सम्यक् परिज्ञान के बिना किसी को भी संस्कृत भाषा की गरिमा ठीक तरह से ज्ञात नहीं हो सकती। सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय समासयुक्त ललित पदावली से अलंकृत है। समास भाषा की स्वाभाविक प्रवृत्तियों में अन्यतम तथा भाषा निर्माण के प्रमुख तत्त्वों में से एक है।

---

[1] पाणिनीय शिक्षा, पृ. १९

[2] महाभाष्य - पस्पशाह्निक

[3] सरस्वतीकण्ठाभरण ३/२/८

**समास : पृष्ठभूमि**

लघुता की प्रवृत्ति होने के कारण समास भाषा की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। सभी पाणिनि परवर्ती वैयाकरणाचार्यों ने समास की पृष्ठभूमि में पाणिनि के अष्टाध्यायी के सूत्र 'समर्थः पदविधिः'[4] को ही रखा है। इसी के आधार पर सभी प्रमुख आचार्यों ने समास वृत्ति विषयक विचार किया है। यह सूत्र समास प्रकरण का प्राणभूत सूत्र है। यद्यपि अष्टाध्यायी में समास का अधिकार द्वितीयाध्याय के प्रथम पाद के तृतीय सूत्र से प्रारम्भ होता है[5], पुनरपि पाणिनि पहले ये बता देना चाहते हैं कि समास किस अवस्था में हो सकता है? इस अवस्था को ज्ञापित करने के लिए ही पाणिनि ने 'समर्थः पदविधिः' सूत्र की रचना की। सूत्र के माध्यम से ज्ञात कराया कि व्याकरण शास्त्र में जो पदविधि की जाती है, वह समर्थ अर्थात् शक्त की होती है[6]।

विग्रह वाक्य में जो शक्त है, वही समर्थ है। जैसे कष्टं श्रितः –'कष्टश्रितः' (कष्ट को प्राप्त) यहाँ कष्ट और श्रित ये दोनों 'द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः'[7] सूत्र से समास को प्राप्त कर लेते हैं। किन्तु 'पश्य देवदत्त कष्टम्, श्रितो विष्णुमित्रो गुरुकुलम्'[8] (हे देवदत्त कष्ट को देख, विष्णुमित्र गुरुकुल में पहुंच गया) इत्यादि वाक्यों में विग्रह वाक्य की समर्थता नहीं है, इसलिए यहाँ कष्टं और श्रितः पद समीप होने पर भी समस्त अवस्था को प्राप्त नहीं होते।

निरुक्त में समासयुक्त पदों के निर्वचन के नियम ज्ञापित करते समय यास्क ने समास शब्द का प्रयोग किया है। समास के साथ साथ तद्धित और एकशेष के बारे में भी उन्होंने निर्वचन के सिद्धान्त बतायें हैं। समास विग्रह का सिद्धान्त रूप में उल्लेख निरुक्त के द्वितीयाध्याय में किया गया है। जहाँ पाणिनि ने समास व्यवस्था का विधान किया कि किस स्थितिं में पदों में समास सम्भव है? तो वहीं यास्क ने समासयुक्त पदों का विग्रह करने के सिद्धान्त बतायें हैं। उनके निर्वचन सिद्धान्त में विग्रह का सिद्धान्त अन्तर्निहित प्रतीत होता है। यास्क लिखते हैं – तद्धित, समास एवं एकशेष में अनेक पदों के होने के कारण पूर्व –पूर्व और अपर अपर पदों को अलग अलग करके निर्वचन करना चाहिए[9]।

अथर्ववेद प्रातिशाख्य में 'समस्यते' पद का प्रयोग किया है[10]। नाट्यशास्त्र में भी समास शब्द आया है[11]। अष्टाध्यायी[12], कातन्त्र व्याकरण[13], चान्द्र व्याकरण[14], सारस्वत व्याकरण[15], सुपद्म व्याकरण[16], प्रयोगरत्नमाला[17], हरिनामामृत[18] तथा सरस्वतीकण्ठाभरण[19] में समास संज्ञा प्रयुक्त है।

अग्निपुराण[20] में समास तथा भगवद्गीता[21] में सामासिक शब्द का प्रयोग है।

**समास शब्द का अर्थ**

दो या दो से अधिक अलग-अलग स्थित समर्थ पदों का परस्पर मिलना और संक्षिप्त रूप को धारण कर लेना समास कहलाता है[22]। जब एक से अधिक शब्द अपने जोड़ने वाले विभक्ति चिह्नों को छोड़कर एवं परस्पर मिलकर एक शब्द बन जाते हैं, तो उस एक पद बनने कि प्रक्रिया को 'समास' अभिधान दिया जाता है – 'समसनमनेकेषां पदानां एकपदीभवनं समासः। यथा – राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः।

सम् उपसर्ग पूर्वक आस् उपवेशने धातु से घञ् प्रत्यय करके समास शब्द निष्पन्न होता है। सम्यक् तया पदों का परस्पर मिलकर एक भाव से स्थित रहना ही समास है। - समुपसर्गाद् घञन्तस्यासेरर्थः पदयोः पदानां वा स्वार्थानामेकार्थे समासात् कथनमेव। तदेव समसनं समास इति[23]।

समास का लक्षण संस्कृत वैय्याकरणों ने सामान्यतः इस प्रकार किया है –

विभक्तिर्लुप्यते यत्र तदर्थस्तु प्रतीयते
पदानां चैकपद्यं च समासः सोऽभिधीयते॥

अर्थात् जहाँ विभक्ति का लोप हो जाता है, पर उसका अर्थ प्रतीत होता रहता है और जहाँ अनेक पद मिलकर एक पद के रूप में परिणत हो जाते हैं, उसे समास कहा जाता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सम् उपसर्ग पूर्वक असुँ क्षेपणे (दिवादिगण/परस्मैपद) धातु से भाव में घञ्[24] (अ) प्रत्यय कर, घञ् के ञित् होने से उपधावृद्धि[25] करने पर समास शब्द निष्पन्न होता है। यह शब्द व्याकरण में योगरूढ या पारिभाषिक माना गया है।

**समास प्रयोजन**

संस्कृत व्याकरण में समास के मुख्यरूप से दो प्रयोजन माने गये हैं। तद्यथा - १ एकपद २. एकस्वर।

समस्त पदों में इन दोनों विशेषताओं का आधान हो जाता है। प्रथमस्तु अनेक पद मिलकर एकपद बनना, जिससे उनमें एकपदता का आधान होता है तथा ऐकपद्यत्वाद् एकस्वरता का भी आधान हो जाता है[26]।

**समास एक वृत्ति**

वृत्ति शब्द संस्कृत व्याकरण का एक पारिभाषिक शब्द है। वृत्ति की परिभाषा करते हुए पतञ्जलि महाभाष्य में कहते है – 'परार्थाभिधानं वृत्तिः'[27]। विशिष्टार्थ का कथन ही वृत्ति है। यथा – 'राजपुरुषः' इस समस्त प्रयोग में राज शब्द पुरुष के अर्थ को कहता है तथा पुरुष शब्द राजा के अर्थ को कहता है। परन्तु 'राज्ञः पुरुषः' इस वाक्यावस्था में राजा शब्द केवल अपने अर्थ को कहता है, पुरुष शब्द के अर्थ को नहीं कहता तथा पुरुष शब्द भी केवल अपने ही अर्थ को कहता है, राजा शब्द के अर्थ को नहीं कहता। इस प्रकार परार्थ का अभिधान करने के कारण समास एक वृत्ति है।

**वृत्ति शब्द की पृष्ठभूमि**

शब्द और अर्थ में विशिष्ट सम्बन्ध जोड़ने के लिए एक विशेष प्रवृत्ति की आवश्यकता होती है, अर्थात् कोई शब्द किसी विशिष्ट अर्थ का ही बोध करवाता है। इसका निश्चय करने के लिए किसी विशेष माध्यम की आवश्यकता होती है। तात्पर्य है शब्द और अर्थ का सम्बन्ध जोड़ने वाली प्रवृत्ति विशेष ही वृत्ति शब्द से जानी जाती है। इसका सुन्दर विवेचन हमें यास्क के निरुक्त में प्राप्त होता है। यास्क के निरुक्त

4 अष्टाध्यायी ०२/०१/०१

5 प्राक्कडारात् समासः – अष्टाध्यायी, ०२/०१/०३

6 यः कश्चिदिह शास्त्रे पदविधिः श्रूयते स समर्थो वेदितव्यः। काशिका ०२/०१/०१

7 अष्टाध्यायी ०२/०१/२३

8 काशिका ०२/०१/०१

9 अथ तद्धितसमासेष्वेकपर्वसु चानेकपर्वसु च पूर्वं पूर्वमपरमपरं प्रविभज्य निर्ब्रूयात्। निरुक्त ०२/०१

10 गतिपूर्वो यदा धातुः क्वचित् स्यात्तद्धितोदयः।
समस्यते गतिस्तत्र आ गमिष्ठा इति निदर्शनम्॥ - अथर्ववेदप्रातिशाख्य ०१/०१/११

11 नामाख्यातनिपातैरुपसर्गसमासतद्धितैर्युक्तः।
सन्धिविभक्तिषु युक्तो विज्ञेयो वाचिकाभिनयः॥ - नाट्यशास्त्र १५/०४

12 प्राक्कडारात्समासः। - अष्टाध्यायी ०२/०१/०३

13 नाम्नां समासो युक्तार्थः। - कातन्त्र व्याकरण

14 चार्थ समास मनोज्ञादिभ्यः। - चान्द्र व्याकरण ४/१/१४९

15 समासश्चान्वये नाम्नाम्। - सारस्वत व्याकरण

16 समर्थानां समासः। - सुपद्म व्याकरण ४/३/१

17 समासश्चानेकपदस्यैकलिङ्गत्वमुच्यते। - प्रयोगरत्नमाला ६/४

18 अन्तर्भिन्नपदत्वेऽप्येकनामत्वेन योजनं समासः।
स च परस्परसम्बन्धार्थानां स्वाद्यन्तानाम्। - हरिनामामृत १६९५, ९६

19 सुप्सुपा सहैकार्थीभावे समासः। - सरस्वतीकण्ठाभरण – ३/२/१

20 षोढा समासं वक्ष्यामि अष्टाविंशतिधा पुनः। - अग्निपुराण ३५५/१

21 द्वन्द्वं सामासिकस्य च। - भगवद्गीता १०/३३

22 तत्र समासेति नामधेयबीजं तु व्यस्तानां पदानां समसनं नाम एकीभावेनावस्थानम्॥ - व्याकरण दर्शन भूमिका, पृ. १२९.

23 सरस्वती सुषमा वर्ष २२, अंक १ में प्रकाशित श्री ब्रजनाथ झा का लेख – समासोक्तिसमासशक्त्योः समता। पृ. ४९

24 अकर्त्तरि च कारके सञ्ज्ञायाम्। - अष्टाध्यायी ३/३/१९

25 अत उपधायाः। - अष्टाध्यायी ७/२/११६

26 समासस्य प्रयोजनमैकपद्यमैकस्वर्यञ्च।

27 महाभाष्य २/१/१

के द्वितीयाध्याय में शब्दों के निर्वचन सिद्धान्त प्रतिपादन में वृत्ति शब्द की चर्चा की है। उनके अनुसार अर्थ की नित्य खोज की जानी चाहिए। प्रकृति प्रत्यय के स्पष्ट नहोने पर भी अर्थ की प्रवृत्ति अर्थात् व्रुत्ति के माध्यम से शब्द के अर्थ का निर्धारण हो सकता है[28]।

अर्थ किसी न किसी शब्द में प्रवृत्ति अवश्य रखता है। यास्क ने अर्थ को विशेष महत्त्व दिया है। इसलिए उन्होंने निरुक्त की उपयोगिता प्रतिपादित करते हुए यही कहा कि इसके बिना अर्थ का निश्चय नहीं हो सकता, यह व्याकरण का भी पूरक है[29]। यास्क की दृष्टि में अर्थ की वृत्तियाँ संशय वाली भी होती है[30]। अतः व्याकरणादि के ज्ञान के द्वारा उन संशयों का निराकरण कर लेना चाहिए[31]। संशयवृत्ति से यास्क का अभिप्राय प्रकृति प्रत्यय सम्बन्धी अवस्था से है। इस सम्बन्ध में उन्होंने व्याकरण सूत्रों द्वारा लोप, आगम, उपधा, दीर्घादि सम्बन्धी कई उदाहरण भी दिए हैं।

दुर्गाचार्य ने यास्क के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए कहा है 'वृत्तिसामान्यः'[32] अर्थात् किसी शब्द में क्रिया गुण आदि की सामान्य वृत्ति होती है, उसे विस्तार कर अर्थ का निर्णय करना चाहिए। शब्द सामान्य से अर्थ सामान्य को बलवान् माना गया है। दुर्गाचार्य ने नाना भावों से अर्थों में अवस्थित प्रवृत्ति को ही वृत्ति के रूप में माना है[33]। इस प्रकार निरुक्त को हम वृत्ति शब्द की पृष्ठभूमि में रख सकते हैं – 'निरुक्तमेवातिप्राचीनं पुस्तकं यद्वृत्ति भाषा-विज्ञानार्थं विज्ञानादीनां विषये विचारं प्रस्तौति'[34]।

इस शब्द का प्रयोग महाभाष्य में शब्दों की अर्थों में प्रवृत्ति एवं प्रत्ययार्थ रूप प्राप्त होता है। समासादि वृत्यर्थ प्रसंग में 'परार्थाभिधानं वृत्तिः' इस प्रकार का लक्षण महाभाष्यकार पतञ्जलि ने किया है, जिसका अभिप्राय है – जो दूसरे अर्थ का कथन करें, वह वृत्ति है। यद्यपि वृत्ति शब्द का प्रयोग पाणिनि ने भी किया है[35], किन्तु पतञ्जलि ने इस सूत्र पर भाष्य नहीं किया है। काशिकाकार ने इस सूत्र में आए वृत्ति शब्द का अर्थ किया है – अप्रतिबन्ध[36]। अर्थात् प्रतिबन्ध का न होना। तात्पर्य यह है कि संशयरहित। यथा – 'ऋतस्य क्रमते बुद्धिः' अर्थात् ऋचाओं में इसकी बुद्धि बिना रोक टोक के चलती है।

**वृत्ति – पदव्युत्पत्ति**

वृतुँ वर्तने[37] धातु से क्तिन्[38] प्रत्यय होकर वृत्ति पद निष्पन्न होता है। इसकी व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है - 'अर्थे वर्तते शब्दोऽनया सम्बन्धव्यक्त्या सा वृत्तिः'। अर्थात् जिस सम्बन्ध के द्वारा अभिव्यक्ति पूर्वक अर्थ में शब्द रहता है, वह वृत्ति है। महाभाष्यकार के अनुसार परार्थ का अभिधान ही वृत्ति है[39]। महाभाष्यकार के मत को ही और अधिक स्पष्ट करते हुए कैय्यट कहते है – दूसरे शब्द का जो अर्थ है उसका अभिधान (कथन) अन्य शब्द से किया जाना ही वृत्ति है। यथा 'राजपुरुषः' इस शब्द में राजन् शब्द से वाक्य अवस्था में अनुक्त पुरुष के अर्थ का बोध होता है[40]। नागेश भट्ट भी इस क्रम में कहते है – समासादि में वृत्ति शब्द का व्यवहार वृत्ति और वृत्तिमान् में अभेद सम्बन्ध का सूचक है[41]।

**पाँच वृत्तियाँ**

महाभाष्यकार के 'परार्थाभिधानं वृत्तिः' इस कथन को उद्धृत करते हुए भट्टोजिदीक्षित ने पाँच प्रकार के व्याकरण सम्बन्धी कार्यो को वृत्ति शब्द से अभिहित किया है। तद्यथा – १. कृत् २. तद्धित ३. समास ४. एकशेष ५. सनाद्यन्त धातु[42]।

इन पाँचों में परार्थाभिधान रूप धर्म रहता है। वस्तुतः वृत्ति एक ही है- परार्थाभिधान। उसी के लिए ये पाँच वृत्तियाँ कल्पित की गई है। इसकी दार्शनिक दृष्टि से व्याख्या करते हुए डॉ. कपिल देव द्विवेदी लिखते है – 'वृत्ति का स्वरूप परार्थाभिधान - परके अर्थ का बोधन कराना, पर अर्थात् ब्रह्म के अर्थ परमार्थ की अभिव्यक्ति के साधन ये पाँच वृत्तियाँ हैं। इन वृत्तियों के यथार्थ ज्ञान से परार्थ परमार्थ प्रतिभा का ज्ञान होता है'[43]।

प्राचीन वैय्याकरणों के अनुसार वृत्तियाँ पाँच प्रकार की हैं, परन्तु नव्य वैय्याकरणों के अनुसार ४ ही प्रकार की वृत्तियाँ हैं। एकशेष के प्रयोगों में ये विद्वान् वृत्तिता नहीं स्वीकार करते हैं, क्योंकि वहाँ अन्य शब्द के अर्थ से अन्वित अपने अर्थ की उपस्थापकता नहीं पाई जाती।

**समासवृत्ति**

समास वृत्ति के दो प्रकार स्वीकार किए गये हैं – जहत्स्वार्था तथा अजहत्स्वार्था। नागेश ने समास वृत्त्यर्थ निरूपण का प्रारम्भ ही इस वाक्य से किया है कि वृत्ति दो प्रकार की होती है- जहत्स्वार्था एवं अजहत्स्वार्था[44]।

वस्तुतः महाभाष्य में ही 'समर्थः पदविधिः' सूत्र के भाष्य में इन दोनों वृत्ति भेदों का उल्लेख है, जिसके आधार पर नागेश ने प्रकरण के प्रारम्भ में ही इनके स्वरूप पर विचार किया है। महाभाष्यकार ने इन दोनों ही वृत्तिभेदों का तात्विक विवेचन किया है तथा समास में इन दोनोम् वृत्तिभेदों को स्वीकार किया है।

**१. जहत्स्वार्था वृत्ति**

'जहति (त्यजन्ति) स्वानि (पदानि) अर्थं यस्यां वृत्तौ सा जहत्स्वार्था' अर्थात् प्रयोग में विद्यमान अवयव भूत पद पृथक् पृथक् रूप से प्रकट किए गये अपने – अपने अर्थो का जिस वृत्ति में परित्याग कर देते हैं, उस वृत्ति का नाम 'जहत्स्वार्था' है। नागेशभट्ट के मत में – 'अवयवभूत पदों के अर्थो की अपेक्षा न करते हुए पूरे शब्द समुदाय के द्वारा एक अभिन्न अर्थ का बोध कराना जहत्स्वार्था है[45]। यथा – एक विशेष प्रकार के सामगान के लिए रथन्तर शब्द का प्रयोग किया गया है। यह प्रयोग रथ शब्द के उपपद होने पर है।रथ शब्द के उपपद में होने पर 'तृ' धातु से 'संज्ञायां भृतृवृजिधारिसहितपिदमः'[46] सूत्र से खच प्रत्यय होकर रथन्तर शब्द बनता है। परन्तु इन दोनों रथ शब्द के साथ तृ धातु तथा 'अ' प्रत्यय रूप अवयवों ने रथन्तर शब्द में अपने-अपने अर्थो का परित्याग कर दिया है, इसलिए रथन्तर शब्द से एक दूसरा ही साम विशेष रूप अर्थ प्रकट होता है, इसलिए यहाँ जहत्स्वार्था वृत्ति है।

इसी प्रकार 'शुश्रूषा' शब्द श्रु धातु के साथ सन् प्रत्यय करके स्त्रीलिङ्ग में टाप् प्रत्यय करके बनता है। किन्तु शुश्रूषा शब्द के सेवा अर्थ में न तो श्रु धातु का सुनना अर्थ और न सन् प्रत्यय का इच्छा अर्थ। दोनों ही अवयव अपने अपने अर्थ का परित्याग करके एक दूसरे ही अर्थ 'सेवा' को प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार यहाँ भी जहत्स्वार्था है।

**२. अजहत्स्वार्था वृत्ति**

'अजहति (न त्यजन्ति) स्वानि (पदानि) अर्थं यस्यां वृत्तौ सा अजहत्स्वार्था' अर्थात् जिस वृत्ति में शब्द के अवयवभूत पद अपने अपने अर्थो का परित्याग किए बिना ही आकांक्षा आदि के कारण एक नवीन अर्थ प्रस्तुत करते हैं, उस वृत्ति का नाम 'अजहत्स्वार्था' है। यथा – 'राजपुरुषः' इस प्रयोग में राजा तथा पुरुष शब्द अपने-

---

28 अथानन्वितेऽर्थे प्रादेशिके विकारेऽर्थनित्यः परीक्षेत केनचिद् वृत्तिसामान्येन। - निरुक्त २/१

29 अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययो न विद्यते। अर्थमप्रतियतो नात्यन्तं सरसंस्कारोद्देशस्तदिदं विद्यास्थानं, व्याकरणस्य कात्स्न्र्यम्। - निरुक्त १/५

30 विशयवत्यो हि वृत्तयो भवन्ति। - निरुक्त २/१

31 यथार्थं विभक्तीः सन्नमयेत्। - निरुक्त २/१

32 दुर्गाचार्यवृत्ति, निरुक्त २/१

33 नानाभावेनार्थेष्ववस्थिता प्रवृत्तिः। - दुर्गाचार्यवृत्ति, निरुक्त २/१

34 अभिधाविमर्शः, पृष्ट - ७६

35 वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः। - अष्टाध्यायी १/३/३८

36 वृत्तिरप्रतिबन्धः। - काशिका १/३/३८

37 धातुपाठ, भ्वादिगण

38 अष्टाध्यायी- ३/३/९४

39 अथ ये वृत्तिं वर्तयन्ति किम् आहुः? परार्थाभिधानं वृत्तिरित्याहुः।

40 'परस्य शब्दस्य योऽर्थस्तस्याभिधानं शब्दान्तरेण यत्र सा वृत्तिरित्यर्थः। यथा – राजपुरुष इत्यत्र राजशब्देन वाक्यावस्थायामुक्तः पुरुषोऽभिधीयते।

41 समासादौ वृत्तिव्यवहारस्तु वृत्तिमतोरभेदोपचाराद् बोध्यः।

42 कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्त धातुरूपाः पञ्च वृत्तयः। - वैय्याकरणसिद्धान्तकौमुदी, सर्वसमासप्रकरण

43 अर्थ विज्ञान, व्याकरण दर्शन की भूमिका, पृ.७

44 वृत्तिर्द्विधा। जहत्स्वार्थाऽजहत्स्वार्था चा। - परमलघुमञ्जूषा, पृ.९६

45 'अवयवार्थं निरपेक्षत्वे सति समुदायार्थं बोधिकात्वं जहत्स्वार्थात्वम्'। - परमलघुमञ्जूषा, पृ. ९६

46 अष्टाध्यायी- ३/२/४६

अपने अर्थों का परित्याग किए बिना ही राजपुरुष इस अर्थ को प्रकट करते हैं, जिसमें दोनों अवयों के अर्थ समन्वित, संसृष्ट अथवा मिले जुले होते हैं। इस प्रकार अजहत्स्वार्था वृत्ति वहाँ होती है, जहाँ एक अपने अर्थ को न छोड़ते हुए अन्य अर्थ का बोध करायें।

भट्टोजिदीक्षित के 'वैयाकरणसिद्धान्तकारिका' से एक मूल कारिका से उद्धृत करते हुए जहत्स्वार्था एवं अजहत्स्वार्था के भी भेदों का सोदाहरण वर्णन 'कौण्डभट्ट' ने किया है। यथा – भेद, संसर्ग और उभय। इस प्रकार वाच्यार्थ के भेद से दोनों वृत्तियों के तीन-तीन भेद होते हैं[47]।

**सरस्वतीकण्ठाभरण में समासवृत्ति**

सरस्वतीकण्ठाभरण में विभक्ति-प्रकरण के उपरान्त समास प्रकरण का वर्णन किया गया है। भोजदेव सरस्वतीकण्ठाभरण के तृतीयाध्याय के द्वितीय एवं तृतीय पाद में समास एवं तत्सम्बद्ध सूत्रों का विधान करते हैं। महाराज भोजदेव सरस्वतीकण्ठाभरण में 'सुप्सुपा सहैकार्थीभावे समासः'[48] द्वारा समास संज्ञा करते हैं। इस सूत्र का अधिकार 'उपसर्जनं पूर्वम्'[49] से पहले तक जाता है[50]। परञ्च समासविषयक सूत्र 'उपसर्जनं पूर्वम्' के बाद भी होने के कारण वे सूत्र भी समासप्रकरणस्थ ही स्वीकार किए गए हैं। इस प्रकार द्वितीय पाद में १६१ तथा तृतीय पाद में १४८, कुल ३०९ सूत्र हैं। पाणिनीय व्याकरण में द्वितीयाध्याय के प्रथम पाद में ७१ तथा द्वितीय पाद में ३८, कुल १०९ ही सूत्र हैं।

पाणिनीय व्याकरणवत् ही भोजीय सरस्वतीकण्ठाभरण में भी प्रामुख्येन चतुर्विध ही समास स्वीकार किया गया है।

**समास विधान**

सरस्वतीकण्ठाभरण के समास प्रकरण का प्रथम सूत्र है – 'सुप्सुपा सहैकार्थीभावे समासः'। पाणिनि ने समासाधिकार के लिए 'प्राक्कडारात्समासः'[51] तथा समास विधान के लिए 'सह सुपा'[52] सूत्र पढ़ा। पाणिनि ने सामर्थ्यादि विवेचन हेतु 'समर्थः पदविधिः'[53] नियामक सूत्र की रचना की। जबकि भोजदेव ने तीनों भावों का एकत्रीकरण करते हुए एक ही सूत्र का निर्माण किया[54]। इस सूत्र में सामर्थ्य की चर्चा एकार्थीभाव के रूप में की गई है। यह समास विधायक एवं अधिकार सूत्र भी है। इस सूत्र से समास का अधिकार अग्रिम सूत्रों में जाता है तथा समास किस स्थिति में हो यह ज्ञापित करता है[55]। इससे भोज की सूक्ष्मेक्षिका का पता चलता है।

महाराज भोजदेव तथा महर्षि पाणिनि इन दोनों ही वैय्याकरणों ने समास इस महती एवं अन्वर्थसंज्ञा तथा इसके अव्ययीभावादि भेदों को समान रूप से स्वीकार किया है। समास की परिभाषा न तो अष्टाध्यायी में प्राप्त होती है और न ही सरस्वतीकण्ठाभरण में। यह बात दूसरी है कि भोज ने अधिक उदाहरणों को सिद्ध किया है, क्योंकि समास विधायक सूत्रों की संख्या अष्टाध्यायी में कम तथा सरस्वतीकण्ठाभरण में ज्यादा है।

**सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची**


1. अष्टाध्यायी (पाणिनीय – शब्दानुशासनम्), पाणिनि, सं. सत्यानन्द वेदवागीश, आर्यनगर, अलवर : १९८९.
2. अष्टाध्यायी-भाष्य प्रथमावृत्ति (भाग-१,२,३), ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली : २०११.
3. कातन्त्रव्याकरणम् (शिष्यहितावृत्तिसहित), शर्ववर्मा, सं. डॉ. रामसागर मिश्र, प्रभा प्रकाशन, दिल्ली : २०००.
4. काशिका, वामनजयादित्यविरचिता, सं. विजयपाल विद्यावारिधि, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, हरियाणा : १९९७.
5. न्यास, (काशिका सहित), जिनेन्द्र बुद्धि, सं. द्वारिकाप्रसाद शास्त्री, बनारस : १९६४.
6. पदमञ्जरी,(काशिका सहित), हरदत्त मिश्र, सं. द्वारिकाप्रसाद शास्त्री, बनारस : १९६४.
7. परिभाषेन्दुशेखरः, नागेशभट्ट, सं. डॉ. गिरिजेशकुमारदीक्षित, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी : १९८७.
8. प्रौढमनोरमा, भट्टोजिदीक्षीत, शब्दरत्नबृहच्छब्दरत्नसहित, सं. सीतराम शास्त्री, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस : १९६४.
9. भोजप्रबन्ध राज्यश्री टीकोपेता, श्री बल्लालकवि, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी : १९६३.
10. महाभाष्य, पतञ्जलि, सं. वेदव्रत शास्त्री,गुरुकुल झज्जर, हरियाणा : १९६४.
11. लघुसिद्धान्तकौमुदी, (भैमी व्याख्या), भीमसेन शास्त्री, भैमी प्रकाशन, दिल्ली : २००५.
12. वाक्यपदीय, भर्तृहरि, चौखम्बा प्रकाशन, दिल्ली : १९९५.
13. वाक्यपदीयम् (व्याख्याद्वयोपेतम्-तृतीय काण्डः), भर्तृहरि, सं. रघुनाथ शर्मा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी : १९९७.
14. वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा, नागेश भट्ट, सं. कालिकाप्रसाद शुक्ल, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी : १९७७.
15. वैयाकरणभूषणसारः, ("प्रभा" "दर्पण" व्याख्याद्वयोपेतः), कौण्डभट्ट, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी : वि. सं. २०६८.
16. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (मूलमात्रम्), भट्टोजिदीक्षित, सं. गोपालदत्तपाण्डेय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी : २००८.
17. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (तत्त्वबोधिनि-बालमनोरमा-शेखरव्याख्यात्रयविराजिता) प्रथम भाग, भट्टोजिदीक्षित, सं. श्रीगुरुप्रसादशास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी : २०१२.
18. व्याकरणमहाभाष्यम् (प्रथमो भागः- द्वितीयखण्डम्), पतञ्जलि, सं. प्रोफेसर बाल शास्त्री, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली : २००१.
19. व्याकरणमहाभाष्यम् (द्वितीयोतृतीयाध्यायौ), पतञ्जलि, सं. प्रोफेसर बाल शास्त्री, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली : २००१.
20. व्याकरणमहाभाष्यम् (विद्यानिधिहिन्दीव्याख्यासहित- द्वितीय खण्ड : द्वितीय भाग), पतञ्जलि, व्या. प्रोफेसर भीमसिंह वेदालंकार, विद्यानिधि शोधसंस्थान, कुरुक्षेत्र : २०१३.
21. सरस्वतीकण्ठाभरण, (प्रथम), भोजदेव, (साहित्य विषयक), सं. कामेश्वर मिश्र, चौखम्बा ओरियण्टालिया, दिल्ली : २००६.
22. सरस्वतीकण्ठाभरणम्, भोजदेव, (व्याकरणविषयक), सं. टी. आर. चिन्तामणि, मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास : १९३७.
23. सरस्वतीकण्ठाभरणम्, भोजदेव, (दण्डनाथ प्रणीत हृदयहारिणी सहित), सं. के. साम्बशिव शास्त्री, अनन्तशयन (त्रिवेन्द्रम्) विश्वविद्यालय, प्रथम भाग : १९३५, द्वितीय भाग : १९३७, तृतीय भाग : १९३८, चतुर्थ भाग – सं. वी. ए. रामास्वामिशास्त्री : १९४८.
24. सरस्वतीकण्ठाभरण – वैदिकव्याकरणम्, भोजदेव, सं. डॉ. नारायण म. कंसारा, राष्ट्रियवेदविद्याप्रतिष्ठान, नई दिल्ली : १९९२.
25. अग्रवाल, वासुदेवशरण, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी : १९६७.
26. उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी : २००६.


---

[47] जहत्स्वार्थाऽजहत्स्वार्थे द्वे वृत्ती ते पुनस्त्रिधा।
भेदः संसर्ग उभयं चेति वाच्यव्यवस्थितेः॥ - वैय्याकरणभूषणसार, सारदीपिकाव्याख्यासहिता, पृ. २१३

[48] सरस्वतीकण्ठाभरण – ३/२/१

[49] सरस्वतीकण्ठाभरण – ३/३/५८

[50] उपसर्जनं पूर्वमित्यतः प्राग् यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः। - सरस्वतीकण्ठाभरण, हृदयहारिणी ३/२/१

[51] अष्टाध्यायी २/१/३

[52] अष्टाध्यायी २/१/४

[53] अष्टाध्यायी २/१/१

[54] सरस्वतीकण्ठाभरण ३/२/१

[55] उपसर्जनं पूर्वमित्यतः प्राग् यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामस्तत्र सुबन्तं सुबन्तेन सहैकार्थीभावे सति समाससंज्ञं भवति। - सरस्वतीकण्ठाभरण, हृदयहारिणी ३/२/१

27. ताताचार्य, एन. एस. रामानुज, सुबर्थ विचार (भाग -२), राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली : २००६.
28. त्रिपाठी, रामसुरेश, संस्कृत व्याकरणदर्शन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली : १९७२.
29. पाण्डेय, गोपालदत्त, संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास (व्याकरण खण्ड), उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ : २००१.
30. मीमांसक, युधिष्ठिर, संस्कृत व्याकरण का इतिहास (प्रथम), रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा : १९९४, द्वितीय : २०००.
31. राजपुरोहित, भगवतीलाल, राजा भोज का रचना विश्व, पब्लिकेशन स्किम, जयपुर : १९९०.
32. रामचन्द्र (डॉ.), सरस्वतीकण्ठाभरण के भ्रष्टपाठ : सत्पाठ निर्धारण, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली : २०१०.
33. …………, सरस्वतीकण्ठाभरण और सिद्धान्तकौमुदी का साङ्गोपाङ्ग विवेचन (तद्धित प्रकरण के विशिष्ट सन्दर्भ सहित), परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली: २०१०.
34. रे उ, विश्वनाथ, राजा भोज, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद : १९३२.
35. शास्त्री, विश्वनाथ, सरस्वतीकण्ठाभरण का समीक्षात्मक अध्ययन, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली : १९९६.